# संसदीय शासन प्रणाली में द्वितीय सदन के रूप में राज्यसभा की भूमिका

***प्रो0 नीता बोरा शर्मा**

व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक दोनों ही स्थानों में उचित व्यवस्था जीवन पद्वति को सहज लगती है। हाब्स लॉक रूसों के सामाजिक समझौते के पीछे भी एक व्यवस्थित जीवन एवं व्यवस्थित समाज की ही संकल्पना थी। प्रजातन्त्र एक ऐसी ही शासन प्रणाली है जिसमें व्यक्ति स्वतन्त्रता, समानता एवं भातृत्व के भाव से रहकर अपने मत से सरकार का गठन करता है।

प्रजातंत्र विश्व में सर्वप्रथम ईसा से 500 वर्ष पूर्व की सदी के पहले अर्द्ध भाग में ग्रीक में प्रस्फुटित हुआ। ''यह शासन तंत्र का प्रथम रूपांतरण था जिसमें कुछ लोगों के हाथ से सत्ता निकलकर अनेक व्यक्तियों के हाथ में पहुँचने का विचार और क्रियान्वयन की परिस्थितियाँ निर्मित हुई''। इसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया केवल ग्रीक तक सीमित नही रही अपितु ये एथेन्स तथा ग्रीक के अनेक नगर राज्यों में प्रसारित हुई। इसके उद्भव के कुछ काल पश्चात् प्रजातंत्र ने रोम के नगर राज्य में अपनी जड़ें जमा लीं। प्रजातंत्र का दूसरा रूपांतरण नगर–राज्य से राष्ट्रीय राज्य के स्वरूप में हुआ। इस काल में विश्व के अनेक साम्राज्य टूटे और नवीन राष्ट्रों के उदय के साथ प्रजातंत्र एक नए स्वरूप में परिलक्षित हुआ। प्रजातंत्र के इस नवीन रूपांतरण को दो दृष्टिकोण से देखा जा सकता हैं प्रथम तो यह कि नगर राज्य के प्रजातंत्र में जहाँ व्यक्ति या विशिष्ट व्यक्ति था, वहीं राष्ट्रीय –राज्य के प्रजातंत्र में वह सामान्य व्यक्ति रह गया। दूसरा दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि सभी राष्ट्रों ने लगभग प्रजातंत्र के ग्रीक प्रारूप को ही स्वीकार किया। प्रारूप को स्वीकार कर जब उसका क्रियान्वयन किया जाता है तब अनेक बाधाएँ आती है। भारतीय प्रजातंत्र के साथ भी यही हुआ।[1]

भारत में प्रजातंत्रों का उद्भव वैदिक जनों से हुआ। इन्होंने राजतंत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक जन–परम्पराओं को सुरक्षित रखा। रोमिला थापर का कथन है कि जन से प्रजातंत्र में संक्रमण के दौरान उन्होंने जन के अनिवार्य लोकतांत्रिक ढाँचे को त्याग दिया, परन्तु जन का प्रतिनिधित्व करने वाली परिषद् के द्वारा शासन पर विचार बनाए रखा।

औपनिवेशिक काल में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य लक्ष्य था। विदेशी शासन को उखाड़ना । उस समय में सामाजिक समानता तथा विकास के प्रजातन्त्रीकरण की अवधारणायें ना तो स्पष्ट थी और ना ही मुखर। उस पृष्ठभूमि में हमारे प्रजातंत्र का जो स्परूप बना उसे हम आज वर्तमान में अनुभव कर रहे है।[2] सन् 1950 से हमने भारत में गणतंत्र की स्थापना की। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत ने ऐसे ही लोकतन्त्र को अपनाया जिसमें मर्यादा, संयम और अनुशासन की व्यवस्था है । लोकतंत्र में त्रुटियाँ हो सकती हैं किन्तु शासन का वह सर्वोत्तम साधन अभी भी है और आगे भी रहेगा क्योंकि उसमें विकास की क्षमता है।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने 14 अगस्त, 1947 की अर्द्धरात्रि में भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के समय जब यह शब्द कहे थे ''बहुत वर्ष हुए हमने भाग्य से एक सौदा किया था, और अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का समय आया है।'' तो उस समय उनके सामने यह स्पष्ट था कि स्वतंत्र भारत कौनसा रास्ता पसन्द करेगा। उन्होंने जनवरी 1938 में ही लिखा था, ''राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य स्वतन्त्र तथा लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना करना है।'' स्वतन्त्रता मिलने से एक उद्देश्य तो 15 अगस्त, 1947 को पूरा हो गया, लेकिन दूसरा उद्देश्य भारत को लोकतंत्र बनाना, बाकी था। इस उद्देश्य को हमारे राष्ट्र– निर्माताओं ने सदैव ध्यान रखा और संविधान बनाने के लिए गठित संविधानसभा में एक प्रस्ताव पेश करके इस दृढ़ और पुनीत संकल्प की घोषणा की कि ''भारत को स्वतंत्र, प्रभुत्वसम्पन्न गणराज्य, उद्घोषित किया जाय जिसे– समस्त शक्ति और अधिकार जनता से प्राप्त होंगे।'' अन्तत जब हमारे देश का संविधान बना तो देश की इच्छा को संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया कि भारत एक ''सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य'' होगा।[3]

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपने समापन भाषण में विचार किया कि संविधान सभा सब मिलाकर एक अच्छा संविधान बनाने में सफल रही है और उन्हें विश्वास है कि यह देश की जरूरतों को अच्छी तरह से पूरा करेगा। किंतु उन्होंने इसके

*प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

साथ यह भी कहा, ''यदि लोग, जो चुनकर आएंगे, योग्य, चरित्रवान और ईमानदार हुए तो वे दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना देंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव हुआ तो संविधान देश की कोई मदद नहीं कर सकता। आखिरकार, एक मशीन की तरह संविधान भी निर्जीव है। इसमें प्राणों का संचार उन व्यक्तियों के द्वारा होता है, जो इस पर नियंत्रण करते हैं तथा इसे चलाते हैं और भारत को इस समय ऐसे लोगों की जरूरत है, जो ईमानदार हों तथा जो देश की हित को सर्वोपरि रखें। हमारे जीवन में विभिन्न तत्वों के कारण विघटनकारी प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है। हममें सांप्रदायिक अंतर हैं, जातिगत अंतर हैं, भाषागत अंतर हैं, प्रांतीय अंतर हैं। इसके लिए दृढ़ चरित्र वाले लोगों की, दूरदर्शी लोगों की, ऐस लोगों की जरूरत है, जो छोटे–छोटे समूहों तथा क्षेत्रों के लिए देश के व्यापक हितों का बलिदान न दें और उन पूर्वाग्रहों से ऊपर उठ सकें जो इन अंतरों के कारण उत्पन्न होते हैं। हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि देश में ऐसे लोग प्रचुर संख्या में सामने आएंगे''।[4]

हमारे संविधान निर्माताओं में कुछ जाने–माने, विलक्षण बुद्धि वाले व्यक्ति, महान न्यायविद, देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी सम्मिलित थे। यदि संविधान सभा का निर्वाचन लोगों द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर भी किया जाता, तो भी उस समय इससे बेहतर या अपेक्षाकृत अधिक प्रातिनिधिक परिणामों की कल्पना करना कठिन है। हमने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन संस्थानों को जारी रखा तथा संविधान में समाविश्ट किया वे ऐस संस्थान थे, जो भारत की धरती पर ही फले–फूले थे। संविधान निर्माताओं ने पुराने संस्थाओं के आधार पर जो पहले विकसित हो चुके थे और जिनके बारे में उन्हें जानकारी थी, जिनसे वे परिचित हो चुके थे और जिनके लिए उन्होंने सभी प्रकार की परिसीमाओं, बंधनों के बावजूद उद्यम किया था, नए संस्थानों का निर्माण करना पसंद किया। संविधान के द्वारा ब्रिटिश शासन को ठुकरा दिया गया किंतु उन संस्थानों को नहीं, जो ब्रिटिश शासनकाल में विकसित हुए थे। उस प्रकार, संविधान औपनिवेशिक अतीत से पूरी तरह से अलग नहीं हुआ।[5] क्योंकि संविधान निर्माण एक सतत् गतिशील प्रक्रिया है इसलिए इस प्रक्रिया में 26 नवम्बर, 1949 को विराम नहीं लगा अपितु 26 जनवरी 1950 को भारत के संविधान के श्री गणेश के बाद भी इसके निर्माण की प्रक्रिया न्यायिक व्याख्या और संविधानिक संशोधनों के माध्यम से जारी रही। समय–समय पर जिन लोगों ने संविधान को चलाया वैसे वैसे उसे नये अर्थ मिलते गये जो आज भी जारी है।[6] इसे आगे बढ़ाने में हमारी व्यवस्थापिका की अहम् भूमिका है।

**संसद की भूमिका**– भारत संघ की सर्वोच्च विधायिका का नाम है, संसद। भारत की संसद राष्ट्रपति तथा दो सदनों से मिलकर बनी है। सदनों के नाम हैं–राज्य सभा तथा लोकसभा। अनुच्छेद 79 के प्रारंभ में ही कहा गया है कि संघ के लिए एक संसद होगी। इसका अर्थ है कि संघ के लिए एक संसद सदैव अस्तित्व में रहेगी। संसद के तीन घटकों में से केवल लोक सभा का ही विघटन हो सकता है। राज्य सभा एक स्थायी अथवा शाश्वत सभा है और यह अनिवार्य है कि सदैव एक राष्ट्रपति तथा एक ऐसा व्यक्ति हो जो राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करे।[7]

संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय परिपाटी अपनाई है। ब्रिटेन की संसद में दो सदन हैं– हाउस ऑफ कामंस और हाउस ऑफ लॉडर्स। भारत में भी दो सदन हैं–लोकसभा और राज्यसभा। पहले ब्रिटेन में दोनों सदनों के अधिकार समान थे। सरकार को दिक्कतें हुईं। 1911 में लार्डसभा के निर्णायक अधिकार घटाए गये। 1949 में लेबर पार्टी ने नया पार्लियामेंट एक्ट पारित करवाया। व्यवस्था हुई कि उच्च सदन की असहमति के बावजूद लोक सदन से एक वर्ष में दूसरी बार पारित विधेयक विधिवत पारित माना जाएगा। द्वितीय सदन की अपनी उपयोगिता है, लेकिन विधायी कार्य में विधि निर्वाचित सरकार की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। परिषद की असहमति के बावजूद विधानसभा द्वारा दूसरी बार पारित विधेयकों को पारित मान लिया जाता है। यहां ब्रिटिश परंपरा का अनुसरण है। भारतीय संसद में दोनों सदनों की असहमति के बाद संयुक्त अधिवेशन के विधान हैं। जापान की संसद डायट में दो सदन हैं। निम्न सदन द्वारा पारित विधेयक दूसरे सदन हैं। निम्न सदन के दो तिहाई बहुमत से पारित माना जाता है। फ्रांस में भी अंततः जनप्रतिनिधि सदन की ही विधायी अधिकारिता है। ब्रिटेन कनाडा, जापान और फ्रांस विधायी कार्यों में जन–निर्वाचित सदनों को प्राथमिकता देते हैं।[8]

**राज्यसभा का महत्व**–भारतीय संविधान के प्रवर्तक के बाद संसद में उच्च सदन 'कांउसिल ऑफ स्टेट्स' का गठन 3 अप्रैल 1952 को किया गया था। इसकी पहली बैठक 13 मई 1952 को हुई थी। इसकी अध्यक्षता तत्कालीन उपराष्ट्रपति डां0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के द्वारा की गयी थी। 23 अगस्त 1954 को सभापति ने सदन में घोषणा के साथ 'कांउसिल ऑफ

स्टेट्स' का हिन्दी नाम 'राज्यसभा' घोषित किया गया। भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। इसके सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होता है। राज्यसभा राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के दो सौ अड़तीस प्रतिनिधियों के अलावा राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित उन बारह सदस्यों से मिलकर बनती है, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा जैसे विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो। कार्य आबंटन नियम, 1961 के अधीन राज्यसभा के लिए नामनिर्देशन का विषय गृह मन्त्रालय को सौंपा गया है जो नामनिर्देशन की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने वाला प्रशासनिक मन्त्रालय है। राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशन कर दिए जाने के बाद गृह मन्त्रालय उसे अधिसूचित करता है।[9]

राज्यसभा का विघटन नहीं होता, किन्तु उसके सदस्यों में से यथासंभव निकटतम एकतिहाई सदस्य लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन इस निमित्त किये गये उपबन्धों के अनुसार, प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर यथाशक्य शीघ्र निवृत्त हो जाते हैं। सदस्य की पदावधि छह वर्ष है, किन्तु आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुना गया सदस्य अपने पूर्ववर्ती के शेष भाग के लिए पद धारण करता है। जहाँ तक किसी सदस्य के पदावधि के आरम्भ होने से संबंध है, वह द्विवार्षिक रूप से निर्वाचित सदस्य के मामले पर उस तारीख से आरम्भ होती है जब उसका नाम भारत सरकार द्वारा राजपत्र में अधि ासूचित किया जाता है और किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचित सदस्य के मामले में उसके निर्वाचन की घोषणा के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित होने की तारीख से या उसके नामनिर्देशन की घोषणा करने वाली अधिसूचना की तारीख से, जैसी भी स्थिति हो, आरम्भ होती है। संविधान के अधीन केवल लोकसभा भंग होती है। उसके विपरीत राज्यसभा कभी भंग नहीं होती। लोकसभा के भंग होने पर उसके समक्ष लम्बित सभी कार्य व्यपगत हो जाते हैं। एक सीमा तक राज्यसभा के समक्ष लम्बित कार्य पर भी प्रभाव पड़ता है।

भारत की संविधान सभा ने गहन विचार के बाद द्विसदनीय संसद बनाई। तब लोकसभा ओर राज्यसभा में असहमति की कोई कल्पना भी नहीं थी। तब दलीय प्रतिबद्धता की तुलना में राष्ट्र सर्वोपरिता का वातावरण था। तो भी संविधान निर्माताओं ने बजट सहित सभी धन विधेयकों के लिए लोकसभा को ज्यादा अधिकार संपन्न बनाया। लोकसभा के बहुमत को ही सरकार चलाने का अधिकार मिला। संविधान ने लोकसभा व राज्यसभा, दोनों को ही प्रतिष्ठा दी है। राज्यसभा ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। संसदीय परंपरा के विकास में इस सदन का महत्वपूर्ण योगदान है संविधान सभा (3 जनवरी 1949) में इस सदन को बनाने पर विवाद हुआ था। लोकनाथ मिश्र ने द्वितीय सदन का विरोध किया था। एम अनंत शयनम् आयंगर ने कहा था कि हम विभिन्न लोगों को राजनीति में भाग लेने का मौका दें। इसलिए दूसरा सदन जरूरी है। अगर निचला सदन आवेश में कोई कानून तुरंत पास करता है तो ऊपरी सदन तक उसके पहुचने तक बीच में आए समय व्यवधान से आवेश का प्रशमन होगा और कानून पर सही विचार होगा।[10]

राज्यसभा की रचना लोकसभा के सहयोगी और सहायक सदन के रूप में की गयी है। लोकसभा के साथ–साथ राज्यसभा भी विधि निर्माण संबंधी कार्य करती है। संविधान के द्वारा अवित्तीय विधेयकों के संबंध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्तियाँ दी गयी हैं। अवित्तीय विधेयक लोकसभा या राज्यसभा दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पहले प्रस्तावित किया जा सकता है और दोनों सदनों से पारित होने के बाद ही राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए जाता है।

संविधान संशोधन के संबंध में राज्यसभा को लोकसभा के समान ही शक्ति प्राप्त है। संविधान में संशोधन का विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है और संशोधन प्रस्ताव तभी स्वीकृत समझा जायेगा, जबकि उसे संसद के दोनों द्वारा अलग–अलग अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से पारित कर किया जाये। संशोधन प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदनों में असहमति होने पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसी स्थिति में संशोधन प्रस्ताव गिर जायेगा।

राज्यसभा को कुछ वित्तीय शक्ति, भी प्राप्त है, यद्यपि संविधान के द्वारा ही इस संबंध में राज्यसभा की तुलना में निर्बल स्थिति प्रदान की गयी है। संविधान के अनुसार वित्त–विधेयक पहले लोकसभा में ही प्रस्तावित किये जायेंगे। लोकसभा द्वारा स्वीकृत होने पर वित्तीय विधेयक राज्यसभा में भेजे जायेंगे जिसके द्वारा अधिक–से–अधिक 14 दिन तक इस विधेयक पर विचार किया जा सकेगा। राज्यसभा वित्त विधेयक के संबंध में अपने सुझाव लोकसभा को दे सकती है लेकिन यह लोकसभा

की इच्छा पर निर्भर है कि वह उन प्रस्तावों को माने या न माने। इस दृष्टि से भारत की राज्यसभा की स्थिति ब्रिटेन के हाउस ऑफ लॉर्डस से भी निर्बल है क्योंकि हाउस ऑफ लॉर्डस के द्वारा वित्त विधेयक पर एक माह तक विचार किया जा सकता है।

संसदात्मक शासन व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् संसद के लोकप्रिय सदन के प्रति ही उत्तरदायी होती है। अतः भारत में भी मन्त्रिपरिषद् केवल लोकसभा के प्रति ही सामूहिक रूप से उत्तरदायी है न कि राज्यसभा के प्रति राज्यसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं और उनकी आलोचना भी कर सकते हैं परन्तु उन्हें अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रियों को हटाने का अधिकार नहीं है। यह अधिकार केवल लोकसभा को ही प्राप्त है। अतः कार्यकारिणी पर नियन्त्रण की दृष्टि से लोकसभा राज्यसभा की तुलना में निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है। उपयुक्त शक्तियों के अलावा राज्य सभा को कुछ शक्तियाँ भी प्राप्त हैं जिनका प्रयोग वह लोकसभा के साथ मिलकर कर सकती हैं। ये शक्तियां और कार्य इस प्रकार हैं[11]।

राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। राज्यसभा के सदस्य लोकसभा सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा अन्य कुछ पदाधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है। महाभियोग केवल तभी पारित समझा जाता है जब दोनों सदन इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें। राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से प्रस्ताव पास कर उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को पद से हटाने का प्रस्ताव प्रथम बार राज्यसभा से ही पारित होकर लोकसभा के पास जाता है।

एक माह से अधिक की अवधि तक यदि आपत्काल लागू रखना हो तो इस प्रकार के प्रस्ताव का अनुमोदन लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों से होना आवश्यक है। लोकसभा के विघटन की स्थिति में केवल राज्यसभा का अनुमोदन ही आवश्यक है। आपात्काल में मौलिक अधिकारों के निलम्बन के लिए दिये गये आदेश को भी यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जाना चाहिये।

**विशेष अधिकार**– राज्यसभा को दो ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जो लोकसभा को प्राप्त नहीं है, और जिनका प्रयोग अकेले राज्यसभा ही करती है। इस प्रकार की शक्तियों का संबंध देश के संघीय ढाँचे से है और राज्यसभा को राज्यों का एकमात्र प्रतिनिधि होने के नाते इस प्रकार की दो शक्तियाँ प्राप्त है–

अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। राज्यसभा द्वारा ऐसे प्रस्ताव पास कर दिये जाने पर संसद उस विषय पर कानून का निर्माण कर सकती है। ऐसे प्रस्ताव प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए लागू होता है, लेकिन यदि राज्यसभा चाहे, तो हर बार इसे एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 312 के अनुसार राज्यसभा ही अपने दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर नयी अखिल भारतीय सेवाएँ स्थापित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे सकती है। राज्यसभा जब तक इस प्रकार का प्रस्ताव पारित न कर दे, तब तक संसद या भारत सरकार किन्हीं नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था नहीं कर सकती हैं।

राज्यसभा की शक्तियों के इस अध्ययन से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि राज्यसभा न केवल द्वितीय सदन वरन् द्वितीय महत्व का सदन ही है। वास्तव में संविधान– निर्माताओं द्वारा राज्यसभा को प्रथम सदन के सहायक और सहयोगी सदन की भूमिका ही प्रदान की गयी है, प्रतिद्वन्द्वी सदन को नहीं। लोकसभा की तुलना में निर्बल होते हुए भी उसकी स्थिति और उसकी शक्तियों का महत्व है।[12]

राज्यसभा उन सभी कार्यों को करती है जो परम्परागत रूप में द्वितीय सदन के द्वारा कियेजाते हैं और भारत जैसे विशाल और संघात्मक व्यवस्था वाले देश के लिए संघात्मक व्यवस्थापिका का द्विसदनात्मक होना नितान्त स्वाभाविक और आवश्यक है। सामान्यतया की राज्यसभा का कार्यकरण सफल रहा है और इसके अस्तित्व के औचित्य पर भी कोई सन्देह नहीं किया जाता है। प्रो0 जितेन्द्र रंजन ने इस संबंध में लिखा है कि ''यह न तो अमरीका सीनेट की भांति अत्यधिक शक्तिशाली

है और न ही ब्रिटिश लॉर्ड सभा या फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्रीय परिषद की भांति अत्यधिक दुर्बल। जापानी व्यवस्था की तरह द्वितीय सदन की निषेधात्मक शक्ति को हमारे संविधान में स्वीकार नहीं किया गया है। इसे सिर्फ दुहराने की पर्याप्त शक्ति दी गयी है, निषेध की नहीं। राज्यसभा न केवल रचना की दृष्टि से विश्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ द्वितीय सदन है, वरन् यह आधुनिक प्रजातंत्र के योग्य तथा द्वितीय सदन के उददेश्यों को पूर्ति करने की दृष्टि से भी सर्वाधिक सन्तुलित द्वितीय सदन है।

राज्यसभा के प्रथम नामित सदस्य डॉ. जाकिर हुसैन से लेकर वर्तमान तक सभी नामित सदस्य अपने–अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ तो रहे ही, इसके अतिरिक्त देश की समसामयिक समस्याओं एवं आवश्यकताओं की ओर इन्होंने संसद का ध्यान आकृष्ट किया है। समय–समय पर अपने सुझावों, विचारोत्तेजक भाषणों, वक्तव्यों एवं कविताओं के माध्यम से उन्होंने संसदीय प्रक्रिया को प्रभावित किया है एवं अपने नामांकन की सार्थकता को सम्मानित किया है। अपने जीवन्त प्रश्नों, बुद्धिमत्तापूर्ण सुझावों, विनोद मिश्रित शैली युक्त सटीक व्यंग्यों, उत्कृष्ट वाद–विवादों, दूरदर्शितापूर्ण प्रस्तावों के माध्यम से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर सभा में गहन विचार विमर्श और इसके द्वारा अपने संवैधानिक अधिकारों के मानदंडों को मनोनीत सदस्यों ने संख्या बल में बहुत कम होने के बावजूद स्थापित किया है। यद्यपि राज्यसभा वित्तीय विधेयकों के संबंध ा में लोकसभा के समान अधिकार नहीं रखती तथापि संसदीय प्रक्रिया के दौरान नामांकित सदस्यों ने बढ़ते हुए करों, बढ़ती हुई कीमतों एवं मुद्रास्फीतिकरण तथा बजट पर चर्चा जैसे अहम मुद्दों पर भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया हैं किसी दल विशेष से संबद्ध न होने की वजह से ये सदस्य निर्भीक होकर अपने विचार रखने में सक्षम रहे हैं। बारह वर्ष लम्बे अन्तराल में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अकेले ही कई बार वित्तीय मामलों पर सरकार को आड़े हाथ लिया था। नामांकन के द्वारा पारदर्शी रूप से आये सदस्यों ने अधिकांशतः निष्पक्षता एवं विशेषज्ञता का परिचय दिया है।[13]

राज्यसभा एक महत्वपूर्ण सदन है इसलिए यहां नीर, क्षीर, विवेक का काम होना चाहिए। दुनिया के अधिकांश देशों में दूसरे सदन नहीं हैं। चीन, अंगोला, आर्मेनिया, बुल्गारिया, मध्य अफ्रीकी गणतंत्र, न्यूजीलैंड, मारीशस, लीबिया, लेबनान, उत्तर व दक्षिण कोरिया, ग्रीस, मिश्र, टर्की, डेनमार्क, पुर्तगाल और श्रीलंका सहित अनेक देशों में एकसदनीय व्यवस्था है। भारत की द्विसदनीय व्यवस्था बेशक अच्छी है, लेकिन विपक्ष इसका सदुपयोग नहीं कर रहा हैं। राज्यसभा धीर– गंभीर सदन है। संकीर्ण दलीय लड़ाई का मंच नहीं। यह गहन विचार–विमर्श का सभा मंडप है। उसने जन– आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया भी है। संविधान के कृपा प्रसाद और जनादेश से विधि निर्वाचित सरकार को काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यहां विराजमान अधिकांश सदस्य अनुभव और वरिष्ठता में बेजोड़ हैं। उन्हें सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को तेज रफ्तार गतिशील करने की प्रेरणा देनी चाहिये।[14]

संसद देश की जनआकांशाओं का प्रतिबिंब है। आम जनता बहुत आश से दोनों सदनों से अपेक्षा करती है। यदि सर्वोच्च संसद से भी निराशा हाथ लगी तो रास्ता अंधी गली की ओर ही मुड़ता है।[15] संसद का प्रमुख काम संसदीय कानून बनाना पूरे भारत को एक विशेष व्यवस्था व संयम नियम में बांधना है। इसे वोट बैंक राजनीति से नहीं जोड़ा जा सकता। सत्तादल को अपने नीति, कार्यक्रम चलाने और व्यवस्था में जरूरी बदलाव लाने का अधिकार जनता ही देती है। ऐसे बदलाव जनविरोधी होंगे तो जनता उसे दंडित करेगी ही। जनादेश प्राप्त सरकार के हरेक काम में अड़ंगा डालने का सीधा अर्थ है–करोड़ों लोगों की भावना व जनादेश का अपमान। विपक्षी दल स्वयं को प्रगतिशील कहते हैं। परंपरा से भी आगे निकलने वाली गति प्रगति है। अड़ंगेबाजी प्रगति नहीं। ब्रिटिश जन पक्के परंपरावादी हैं, तो भी उन्होंने अपनी संसदीय पंरपरा का प्रगतिशील विकास किया। भारत को भी समय की चुनौती अनुरूप गहन विचार विमर्श करना चाहिए। संप्रति राजनीतिक सुधारों के साथ संसदीय परिपाटी और विधायी परंपरा के एक एक बिंदु पर व्यापक राष्ट्रीय बहस की आवश्यकता है। राष्ट्र अधीर है। उसे काम चाहिए और काम के परिणाम भी चाहिये।

जनतंत्र में असहमति हो सकती है लेकिन एक आदर्श प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सहमति और असहमति का संघर्ष ही नहीं अपितु समाधान भी होना चाहिये। ऐसा तभी होगा जब राजनीतिक दल राष्ट्रहित सम्बन्धी विषयों पर एकमत होकर अपनी सहमति व्यक्त करें। आज बदलती राजनीति में विपक्ष का मतलब विरोध के लिए विरोध नही रह गया है। अपितु सदन में विपक्षी दल अपनी सक्रियता को रचनात्मक सुझावों के साथ बरकरार रखें। महात्मा गांधी जी ने सुझाव दिया था कि–

जितना समय और धन संसद पर व्यय किया जाता है, उतने धन साधनों और समय का विनियोग यदि भले लोगों द्वारा जनता के हित में किया जाये तो वास्तव में जनता के कल्याण को सुनिश्चित किया जा सकता हैं। आज संसदीय व्यवस्था के परिमार्जन हेतु सभी राजनीतिक दलों को निष्ठावान होकर अपना आत्म –अवलोकन करना चाहिये। इसके लिये संसद के दोनों सदनों को अपने कर्तव्यों को समझना चाहिये। पं0 नेहरू ने उचित कहा ''दोनों सदनों के द्वारा परस्पर सहयोग के आधार पर कार्य किया जाना चाहिये, क्योंकि इन दोनों मे से कोई एक नहीं, वरन् दोनों एक साथ मिलकर ही भारत की संसद का निर्माण करते और भारतीय संसद के रूप में जाने जाते है। क्योंकि जैसा कि मोरिस जोन्स का मानना था संस्थाओं का यह स्वभाव होता है कि वे निष्ठाओं को जन्म देती है और जब दो संस्थाओं की स्थिति प्रायः समान होती है तो उनमें मतभेदों का उत्पन्न हो जाना सर्वथा स्वभाविक है।''[16] पर संसद को ऐसे तरीके विकसित करने होंगे जिससे संसद सर्वहित में कार्य कर सके।

**सन्दर्भ सूची–**


1. सिंह मनोज कुमार, भारत में सामाजिक परिवर्तन, अर्जुन पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली 2005, पृष्ठ2
2. वही पृष्ठ 3
3. फाड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति 1981 पृष्ठ 762
4. कश्यप सुभाष, हमारा संविधान नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया 2013 पृष्ठ 32
5. कश्यप सुभाष वही पृष्ठ 33
6. कश्यप सुभाष कांस्टिट्यूशन मेंकिग सिन्स, 1950 ,एन ओवरव्यू, यूनिवर्सल, नई दिल्ली, 2004
7. कश्यप सुभाष वही पृष्ठ 169
8. दीक्षित हृदयनारायण राज्यसभा का दुरपयोग उद्रत दैनिक जागरण 3 अप्रैल 2015
9. जैन प्रभाकिरण मनोनयन भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 2013 पृष्ठ 14
10. दीक्षित हृदयनारायण वही
11. फाड़िया वही 365, 367
12. फाड़िया वही 366
13. जैन प्रभाकिरण वही पृष्ठ 15,16
14. दीक्षित हृदयनारायण वही
15. दीक्षित हृदयनारायण वही
16. मोरिस जोन्स, पार्लियामेन्ट ऑफ इण्डिया पृष्ठ 262